

ResearchPro International Multidisciplinary Journal



Vol- 2, Issue- 3, July-September 2026

ISSN (O)- 3107-9679

Email id: editor@researchprojournal.com

Website- www.researchprojournal.com

रामायण में दास-प्रथा और प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना

डॉ. कुमारी पूनम

प्रवक्ता, इतिहास विभाग, एस.एन.एस.वाई. इंटर कॉलेज, पूर्णिया, बिहार

Article Info: (Received- 09/02/2026, Accept- 08/04/2026, Published- 03/07/2026)

DOI- [10.70650/rpimj.2026v2i3000005](https://doi.org/10.70650/rpimj.2026v2i3000005)

सारांश

प्रस्तुत शोध-लेख रामायण में दास-प्रथा और प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना में रामायण में वर्णित दास-प्रथा का ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से विश्लेषण किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि रामायणकालीन समाज में दास-प्रथा एक सुव्यवस्थित सामाजिक संस्था के रूप में विद्यमान थी, जिसका स्वरूप केवल पराधीन श्रम तक सीमित न होकर राजकीय, पारिवारिक तथा धार्मिक जीवन से भी घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त दस्यु एवं दास शब्दों के अर्थ-विकास का विवेचन करते हुए यह प्रतिपादित किया गया है कि प्रारम्भ में युद्धबन्दी एवं पराजित समुदायों के लिए प्रयुक्त 'दास' शब्द उत्तरकाल में सेवक एवं आश्रित व्यक्ति का बोधक बन गया। रामायण में दासों एवं दासियों का उल्लेख मुख्यतः राजपरिवारों, सामन्तों तथा उच्चवर्गीय परिवारों के संदर्भ में प्राप्त होता है। सीता-विवाह, दान-प्रथा, राजकीय उपहार तथा वनगमन जैसे प्रसंगों से ज्ञात होता है कि दास-दासियाँ तत्कालीन सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का अभिन्न अंग थीं। लेख में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि रामायणकालीन दास-प्रथा का स्वरूप अन्य प्राचीन सभ्यताओं की अपेक्षा अपेक्षाकृत अधिक मानवीय था। स्वामी और दास के मध्य संबंध केवल स्वामित्व पर आधारित न होकर संरक्षण, उत्तरदायित्व, निष्ठा एवं कर्तव्यपरायणता से भी जुड़े हुए थे। दासों के भरण-पोषण, सुरक्षा तथा जीवन-निर्वाह का उत्तरदायित्व स्वामी पर था, जबकि दास पूर्ण समर्पण एवं निष्ठा के साथ सेवा करते थे। रामायण के आधार पर यह भी स्पष्ट होता है कि दास-प्रथा तत्कालीन सामाजिक पदानुक्रम, वर्ण-व्यवस्था, आर्थिक संसाधनों तथा राजकीय वैभव का महत्वपूर्ण अंग थी। इस प्रकार यह अध्ययन रामायण के माध्यम से प्राचीन भारतीय समाज की सामाजिक संरचना, आर्थिक संबंधों तथा सांस्कृतिक मूल्यों को समझने में महत्वपूर्ण आधार प्रदान करता है।

मूल शब्द— रामायण, दास-प्रथा, प्राचीन भारत, सामाजिक संरचना, दास एवं दासियाँ, वाल्मीकि रामायण

प्राचीन भारत में दास-प्रथा की उत्पत्ति एवं उसके क्रमिक विकास के संबंध में विभिन्न ऐतिहासिक, धार्मिक तथा साहित्यिक स्रोतों से महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। उपलब्ध साक्ष्यों से स्पष्ट होता है कि भारतीय समाज में दास-प्रथा किसी एक काल अथवा घटना का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सैन्य परिस्थितियों के प्रभाव से क्रमशः विकसित हुई। इतिहासकार रिजडेविज़ के अनुसार दास वे व्यक्ति थे जिन्हें युद्ध अथवा लूटमार के समय बन्दी बनाकर दास बना लिया जाता था, अथवा जिन्हें न्यायालय द्वारा दण्डस्वरूप उनकी स्वतंत्रता से वंचित कर दासत्व स्वीकार करने के लिए बाध्य किया जाता था। कुछ परिस्थितियों में व्यक्ति स्वेच्छा से भी दासत्व स्वीकार कर लेते थे। ऐसे दासों की संतानें भी जन्म से दास मानी

जाती थीं।

ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में दास-प्रथा का प्रारम्भिक स्वरूप युद्ध-बंदियों से संबद्ध था। युद्ध में विजय प्राप्त करने वाला पक्ष पराजित पक्ष के अनेक सैनिकों एवं नागरिकों को बंदी बना लेता था। इन बंदियों में से अनेक को दास बनाकर विजेता अपने घरेलू, राजकीय अथवा अन्य आवश्यक कार्यों में नियुक्त करता था। महाभारत में भी युद्ध में पराजित व्यक्तियों को विजेता द्वारा दास बनाए जाने का उल्लेख प्राप्त होता है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि युद्धबंदी दास-प्रथा की स्थापना का एक प्रमुख आधार थे।

युद्ध के अतिरिक्त भी अनेक सामाजिक एवं आर्थिक कारण ऐसे थे जिनके परिणामस्वरूप व्यक्ति दासत्व को प्राप्त होते थे। इनमें आर्थिक विपन्नता, ऋणग्रस्तता तथा सामाजिक विवशताएँ प्रमुख थीं। निर्धनता के कारण अनेक व्यक्तियों को जीविकोपार्जन के साधनों के अभाव में स्वयं अथवा अपने परिवार के सदस्यों को सेवा अथवा दासत्व के लिए प्रस्तुत करना पड़ता था। तत्कालीन वर्ण-व्यवस्था में भी सामाजिक स्तर एवं व्यवसायगत विभाजन के कारण दासत्व का संबंध मुख्यतः शूद्र वर्ग से जोड़ा गया। यद्यपि व्यवहार में विभिन्न प्रकार की आपात एवं संकटपूर्ण परिस्थितियों में अन्य वर्णों अथवा जातियों के लोग भी दास बनने के लिए विवश हो जाते थे। इससे स्पष्ट होता है कि दास-प्रथा केवल वर्णगत व्यवस्था का परिणाम नहीं थी, बल्कि उसके पीछे तत्कालीन समाज की आर्थिक विषमता, राजनीतिक अस्थिरता तथा सामाजिक संरचना की भी महत्वपूर्ण भूमिका थी।

धर्मशास्त्रीय ग्रंथों में दासों के विभिन्न प्रकारों का भी उल्लेख मिलता है। मनुस्मृति में सात प्रकार के दासों का वर्णन किया गया है, जिनके आधार पर तत्कालीन समाज में दासत्व की विविध परिस्थितियों का ज्ञान होता है। इनमें (1) ध्वजाहृत- युद्ध में पराजित होकर बंदी बनाया गया दास, (2) भक्तदास- जिसने स्वेच्छा से किसी स्वामी की सेवा स्वीकार कर स्वयं को समर्पित कर दिया हो, (3) गृहज- दासी से उत्पन्न संतान, (4) क्रीतदास- जो मूल्य देकर खरीदा गया हो, (5) दत्तिम- जिसे किसी अन्य व्यक्ति अथवा स्वामी द्वारा दानस्वरूप प्रदान किया गया हो, (6) पैतृक- जो पैतृक रूप से दासत्व की परंपरा में प्राप्त हुआ हो तथा (7) दण्डदास- जो किसी अपराध के दण्डस्वरूप दास बनाया गया हो। यह वर्गीकरण इस तथ्य का परिचायक है कि प्राचीन भारतीय समाज में दासत्व प्राप्त करने के अनेक आधार विद्यमान थे तथा दास-प्रथा एक सुव्यवस्थित सामाजिक संस्था के रूप में विकसित हो चुकी थी।

दास शब्द का संस्कृत पर्यायवाची दासः है, जिसका सामान्य अर्थ सेवक, पराधीन अथवा आश्रित व्यक्ति से लगाया जाता है। हलायुध कोश के अनुसार इसका शाब्दिक अर्थ ऐसा व्यक्ति है, जिसके श्रम का प्रतिफल अथवा पारिश्रमिक उसके स्वयं के अधिकार में न होकर किसी अन्य व्यक्ति के अधीन होता है। इस प्रकार श्दासः शब्द केवल किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का परिचायक नहीं था, बल्कि वह तत्कालीन आर्थिक एवं श्रम-संबंधों का भी द्योतक था। आधुनिक अंग्रेजी में इस व्यवस्था को Slavery System अर्थात् दास-प्रथा कहा जाता है। यह व्यवस्था उस सामाजिक संरचना को अभिव्यक्त करती है जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता सीमित होकर उसका श्रम किसी अन्य व्यक्ति अथवा संस्था के नियंत्रण में आ जाता है।

भारत के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रंथ ऋग्वेद में आर्य तथा दस्यु दो भिन्न सामाजिक एवं सांस्कृतिक समूहों का उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में दस्यु शब्द का प्रयोग उन आर्यतर समुदायों के लिए किया गया है, जिनकी धार्मिक मान्यताएँ, सांस्कृतिक परम्पराएँ तथा जीवन-पद्धति आर्यों से भिन्न थीं। इन समुदायों और आर्यों के मध्य समय-समय पर राजनीतिक प्रभुत्व, संसाधनों तथा भू-भागों को लेकर संघर्ष होते रहे। इन संघर्षों में जब आर्यों को विजय प्राप्त होती थी, तब पराजित समुदायों के अनेक व्यक्तियों को बंदी बना लिया जाता था। यही पराजित समुदाय कालान्तर में दास की संज्ञा से भी अभिहित किए जाने लगे। इस प्रकार दस्यु से श्दासः तक की अवधारणा केवल भाषिक परिवर्तन का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह तत्कालीन सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों के परिवर्तन को भी प्रतिबिम्बित करती है। ऋग्वेद की एक ऋचा में एक ही व्यक्ति को पहले दस्यु और तत्पश्चात् दास कहकर संबोधित किया गया है। यह तथ्य इस बात का प्रमाण है कि प्रारम्भिक वैदिक साहित्य में दोनों शब्दों का प्रयोग अनेक प्रसंगों में परस्पर संबद्ध अर्थों में हुआ है।

ऋग्वेद के अनेक अन्य मंत्रों में भी श्दासः शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है। इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समाज में दास-प्रथा का प्रारम्भिक स्वरूप विद्यमान था। यद्यपि प्रत्येक स्थान पर दास शब्द का अर्थ आधुनिक अर्थों में दास-प्रथा से नहीं जोड़ा जा सकता, तथापि उपलब्ध वैदिक साक्ष्य यह संकेत अवश्य देते हैं कि युद्ध में पराजित एवं पराधीन समुदायों के लिए इस शब्द का व्यापक रूप से प्रयोग होने लगा था। इससे यह

भी अनुमान लगाया जा सकता है कि वैदिक समाज में युद्ध केवल राजनीतिक विजय का माध्यम नहीं था, बल्कि उसने सामाजिक संरचना को भी प्रभावित किया, जिसके परिणामस्वरूप पराधीन श्रम-व्यवस्था का विकास हुआ।

इन वैदिक प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि प्राचीन भारत में दास-प्रथा की उत्पत्ति का प्रमुख कारण युद्ध था। आर्यों द्वारा आर्यतर जातियों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त पराजित व्यक्तियों को या तो उनके मूल निवास-स्थानों से निष्कासित कर दिया जाता था अथवा उन्हें बंदी बनाकर सेवा-कार्य में नियुक्त कर लिया जाता था। प्रारम्भ में यह व्यवस्था विजित समुदायों को नियंत्रित करने का साधन थी, किन्तु धीरे-धीरे यह एक संगठित सामाजिक संस्था में परिवर्तित हो गई। उत्तरवैदिक एवं धर्मशास्त्रीय काल तक आते-आते दास-प्रथा भारतीय समाज की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था का अभिन्न अंग बन चुकी थी। कौटिल्य, मनु, नारद तथा अन्य धर्मशास्त्रकारों ने अपने ग्रंथों में दासों के प्रकार, उनके अधिकारों, कर्तव्यों, दास-मुक्ति तथा स्वामी-दास संबंधों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया है। इससे स्पष्ट होता है कि दास-प्रथा केवल युद्धबंदियों तक सीमित नहीं रही, बल्कि उसने विधिक एवं सामाजिक संस्था का स्वरूप ग्रहण कर लिया था।

अतः समग्र विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में दास-प्रथा की उत्पत्ति बहुकारकीय थी। यद्यपि युद्ध इसका प्रारम्भिक एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था, तथापि आर्थिक विपन्नता, सामाजिक विषमता, न्यायिक दण्ड-व्यवस्था तथा अन्य आकस्मिक परिस्थितियों ने भी इसके विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप दास-प्रथा भारतीय समाज की सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संरचना का अभिन्न अंग बन गई, जिसका क्रमिक विकास वैदिक साहित्य से लेकर धर्मशास्त्रों एवं महाकाव्यों तक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

रामायण में आर्य एवं दास दोनों शब्दों का पर्याप्त उल्लेख प्राप्त होता है। आर्य, आर्यपुत्र, आर्य आदि संबोधन ग्रंथ में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ श्रार्यश शब्द किसी विशिष्ट जाति का सूचक न होकर एक गुणात्मक विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। इस काल में श्रार्यश शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के लिए किया जाता था जो सत्यनिष्ठ, सदाचारी, विनम्र, कर्तव्यपरायण तथा धर्मपालक हो। जो व्यक्ति अपने वर्णधर्म, सामाजिक मर्यादाओं तथा राजनीतिक-धार्मिक नियमों का निष्ठापूर्वक पालन करता था, वह आर्य कहलाने योग्य माना जाता था। यही कारण है कि दशरथ, राम, लक्ष्मण, भरत, कौशल्या तथा सीता जैसे पात्रों को भी विभिन्न प्रसंगों में आर्य अथवा आर्यपुत्र कहकर संबोधित किया गया है। इतना ही नहीं, धर्मनिष्ठ एवं सद्गुणी विभीषण को भी श्रीराम द्वारा श्रार्यश कहकर संबोधित किया जाना इस तथ्य का प्रमाण है कि श्रार्यश की अवधारणा नैतिक श्रेष्ठता से जुड़ी हुई थी, न कि किसी जातिगत पहचान से।

रामायण में दास एवं दासियों का उल्लेख विशेषतः क्षत्रिय राजपरिवारों और राजमहलों के संदर्भ में मिलता है। ये दास सामान्यतः राजाओं अथवा उच्चवर्गीय परिवारों के आश्रित होते थे तथा उनके गृहस्थ एवं राजकीय कार्यों में संलग्न रहकर जीवनयापन करते थे। अनेक दास ऐसे भी थे जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक ही परिवार की सेवा करते थे। इस प्रकार के पारिवारिक दास आजीवन सेवक के समान अपने स्वामी के परिवार से जुड़े रहते थे और कालान्तर में परिवार का अभिन्न अंग माने जाने लगते थे। उनकी सामाजिक स्थिति स्वतंत्र व्यक्तियों से निम्न अवश्य थी, तथापि राजपरिवारों में दीर्घकालीन सेवा एवं निष्ठा के कारण उन्हें संरक्षण, आश्रय तथा आजीविका भी प्राप्त रहती थी।

पारिवारिक दासों को प्रायः परिवार का अभिन्न सदस्य माना जाता था। वे केवल सेवा करने वाले आश्रित व्यक्ति नहीं थे, बल्कि परिवार की दैनिक व्यवस्था एवं जीवन-प्रवाह का महत्वपूर्ण अंग बन जाते थे। अनेक अवसरों पर उन्हें परिवार की संपत्ति का अंग समझा जाता था तथा संपत्ति के साथ उनके दान का भी उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि विश्व के अनेक प्राचीन देशों में दास-प्रथा विद्यमान थी, तथापि वहाँ दासों के साथ प्रायः कठोर, अमानवीय तथा शोषणपूर्ण व्यवहार किया जाता था। इसके विपरीत भारतीय परंपरा में दास और स्वामी के संबंध अपेक्षाकृत अधिक मानवीय एवं स्नेहपूर्ण माने गए हैं। भारतीय समाज में दास अपने स्वामी के विश्वास एवं स्नेह के पात्र होते थे तथा अनेक परिस्थितियों में उनके साथ परिवार के सदस्य जैसा व्यवहार किया जाता था। यह विशेषता भारतीय सामाजिक व्यवस्था को अन्य समकालीन सभ्यताओं से पृथक् स्वरूप प्रदान करती है।

रामायणकालीन समाज में दास शब्द का आशय केवल जन्मगत दासत्व तक सीमित नहीं था, बल्कि इसका संबंध सेवा, समर्पण और विनम्रता की भावना से भी था। जो व्यक्ति अपने से श्रेष्ठ, पूज्य अथवा आदरणीय जनों की सेवा में स्वयं को समर्पित करता था, वह विनयपूर्वक अपने को दास, भृत्य अथवा सेवक कहकर संबोधित करता

था। इस प्रकार रामायण युग में दासत्व की अवधारणा केवल सामाजिक संस्था न रहकर एक व्यापक सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्य का रूप धारण कर चुकी थी। पुत्र भी अपने गुरु, माता एवं पिता की सेवा को अपना परम धर्म मानते हुए स्वयं को उनका सेवक अथवा दास कहने में गौरव का अनुभव करता था। फलतः श्दासः शब्द का प्रयोग केवल शूद्र अथवा पराधीन वर्ग के लिए न होकर प्रत्येक उस व्यक्ति के लिए होने लगा, जो सेवा एवं कर्तव्यपरायणता को अपने जीवन का आदर्श मानता था। तथापि सामाजिक वर्गीकरण की दृष्टि से पारिवारिक दास एवं दासियाँ प्रायः शूद्र वर्ग के अंतर्गत ही गिने जाते थे।

रामायण में वर्णित दासों का प्रमुख निवास राजमहलों एवं राजकीय आश्रयों में था। वे मुख्यतः राजा तथा राजपरिवार की सेवा में नियुक्त रहते थे। उनका सर्वोपरि कर्तव्य अपने स्वामी की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करना तथा उनके हित के लिए पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ कार्य करना था। इसी कारण उनके कर्तव्य को श्रुत्यकर्म कहा गया है। आदर्श भृत्य वही माना जाता था, जो स्वामी द्वारा सौंपे गए अत्यंत कठिन एवं दुष्कर कार्यों को भी धैर्य, निष्ठा और पूर्ण समर्पण के साथ संपन्न करे। इस संदर्भ में हनुमान का चरित्र भृत्यधर्म का सर्वोत्तम उदाहरण प्रस्तुत करता है। उन्होंने श्रीराम के आदेशानुसार अत्यंत कठिन कार्यों जैसे— सीता की खोज, समुद्र लंघन, लंका में प्रवेश तथा शत्रु के मध्य रहकर संदेश-प्रेषण को अद्वितीय साहस, बुद्धिमत्ता और स्वामिभक्ति के साथ पूर्ण किया। इस प्रकार उन्होंने आदर्श सेवक के समस्त गुणों का परिचय दिया। रामायण के अनुसार भृत्य अथवा दास का वास्तविक धर्म अपने स्वामी के सुख को अपना सुख तथा उसके दुःख को अपना दुःख मानकर पूर्ण निष्ठा के साथ उसकी सेवा करना था।

सीता के विवाह के अवसर पर मिथिला नरेश राजा जनक ने अपनी पुत्री को केवल स्वर्ण, रत्न, वस्त्र, आभूषण तथा अन्य बहुमूल्य उपहार ही प्रदान नहीं किए, बल्कि बड़ी संख्या में दासियों को भी उपहारस्वरूप भेंट किया। इससे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में दासियाँ राजपरिवार की संपत्ति एवं ऐश्वर्य का एक महत्वपूर्ण अंग मानी जाती थीं। वे केवल घरेलू सेविका के रूप में ही कार्य नहीं करती थीं, बल्कि राजकुमारियों एवं रानियों की व्यक्तिगत परिचारिका, सहचरी तथा विभिन्न राजकीय एवं पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन में भी उनकी सहयोगिनी होती थीं। इस प्रकार दासियों का स्थान केवल श्रमिक अथवा सेवक तक सीमित न होकर राजपरिवार की दैनिक व्यवस्था का एक आवश्यक अंग बन चुका था।

उल्लेखनीय है कि राजा जनक ने अपनी पुत्रियों के साथ सौ-सौ कुमारियों तथा उत्तम कुलों से संबंधित दास-दासियों को भी विदा किया। इससे तत्कालीन वैवाहिक परंपराओं का भी ज्ञान होता है, जिसमें राजपरिवारों के मध्य होने वाले वैवाहिक संबंध केवल पारिवारिक नहीं, बल्कि राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण होते थे। दहेज में दास-दासियों का प्रदान किया जाना इस बात का सूचक है कि वे उस समय चल-अचल संपत्ति के समान मूल्यवान माने जाते थे तथा उनका स्वामित्व राजकीय वैभव एवं प्रतिष्ठा का प्रतीक समझा जाता था। यद्यपि आधुनिक दृष्टि से यह व्यवस्था मानवीय अधिकारों के प्रतिकूल प्रतीत होती है, तथापि तत्कालीन सामाजिक संरचना में इसे एक सामान्य एवं स्वीकृत परंपरा के रूप में स्वीकार किया गया था।

रामायण के उत्तरकाण्ड में भी अनेक स्थानों पर सामन्तों एवं अधीनस्थ राजाओं द्वारा श्रीराम को विविध प्रकार के बहुमूल्य उपहारों के साथ दास-दासियों को भेंट करने का उल्लेख प्राप्त होता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि दास केवल व्यक्तिगत सेवा के लिए ही नहीं, बल्कि राजकीय उपहार, कूटनीतिक संबंधों तथा राजनीतिक निष्ठा के प्रदर्शन का भी महत्वपूर्ण माध्यम थे। अतः रामायणकालीन समाज में दास-प्रथा का संबंध केवल श्रम-व्यवस्था से न होकर तत्कालीन आर्थिक संसाधनों, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं राजनीतिक संरचना से भी घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ था। रामायण में केवल राजपरिवारों के अंतर्गत ही दास-दासियों का उल्लेख नहीं मिलता, अपितु राजकीय एवं धार्मिक अवसरों पर उन्हें उपहार अथवा दानस्वरूप प्रदान किए जाने की परम्परा का भी उल्लेख प्राप्त होता है। उत्तरकाण्ड में वर्णित है कि विभिन्न सामन्तों एवं अधीनस्थ नरेशों ने श्रीराम को अन्य बहुमूल्य उपहारों के साथ दास-दासियों को भी भेंटस्वरूप अर्पित किया था। इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में दास-दासियाँ मूल्यवान संपत्ति का अंग मानी जाती थीं तथा उनका आदान-प्रदान राजकीय सम्मान, निष्ठा एवं राजनीतिक संबंधों की अभिव्यक्ति का माध्यम भी था। इससे यह भी ज्ञात होता है कि दास-प्रथा तत्कालीन आर्थिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हुई थी।

रामायण में यह भी उल्लेख प्राप्त होता है कि श्रीराम ने स्वयं ब्राह्मणों तथा आचार्यों को दान के रूप में दासियों का प्रदान किया था। वैदिक एवं उत्तरवैदिक परम्परा में ब्राह्मणों एवं आचार्यों को गो, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र तथा अन्य

उपयोगी वस्तुओं के साथ दास-दासियों का दान भी धार्मिक पुण्य एवं राजधर्म का एक अंग माना जाता था। इससे यह स्पष्ट होता है कि दास-दासियाँ केवल राजमहलों तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे तत्कालीन दान-व्यवस्था एवं धार्मिक अनुष्ठानों का भी एक अभिन्न अंग बन चुकी थीं।

इसी प्रकार अयोध्याकाण्ड में उल्लेख मिलता है कि वनगमन के समय श्रीराम ने अपने अधीनस्थ दास-दासियों को अपने गुरु के संरक्षण एवं सेवा में समर्पित कर दिया था। इस प्रसंग से यह तथ्य उद्घाटित होता है कि दास-दासियों को केवल उपयोग की वस्तु न मानकर उनके पालन-पोषण एवं संरक्षण का उत्तरदायित्व भी स्वामी का माना जाता था। श्रीराम ने वनवास के समय उन्हें असहाय छोड़ने के स्थान पर एक योग्य संरक्षक के अधीन सौंप दिया, जिससे उनके जीवन-निर्वाह एवं सुरक्षा की व्यवस्था बनी रहे। यह प्रसंग रामायणकालीन समाज में स्वामी के नैतिक उत्तरदायित्व एवं दासों के प्रति संरक्षणकारी दृष्टिकोण का महत्वपूर्ण उदाहरण प्रस्तुत करता है।

अयोध्या के राजमहलों का वर्णन करते हुए रामायण में स्पष्ट संकेत मिलता है कि श्रीराम तथा महारानी कैकेयी के महलों में दास-दासियों के अनेक समूह निवास करते थे। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि राजमहलों की विशाल व्यवस्था, राजपरिवार के दैनिक कार्य, अतिथियों के सत्कार, सुरक्षा, भोजन-व्यवस्था तथा अन्य प्रशासनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए बड़ी संख्या में सेवकों एवं दास-दासियों की आवश्यकता होती थी। फलतः दास-प्रथा तत्कालीन राजकीय जीवन एवं प्रशासनिक संरचना का एक अनिवार्य अंग बन चुकी थी।

इसके विपरीत रामायण में वानरों की किष्किन्धा तथा राक्षसों की लंका में दास-दासियों का उल्लेख अत्यन्त अल्प अथवा अपवादस्वरूप ही प्राप्त होता है। यह तथ्य विशेष ध्यान देने योग्य है। इसका एक संभावित कारण यह माना जा सकता है कि किष्किन्धा का समाज मुख्यतः वन-आधारित एवं फल-संग्रह पर आश्रित था, जहाँ कृषि एवं स्थायी आर्थिक उत्पादन का विकास सीमित था। दूसरी ओर लंका का समाज यद्यपि अत्यन्त समृद्ध एवं वैभवशाली था, तथापि उसका आर्थिक आधार व्यापार, समुद्री गतिविधियों तथा सैन्य शक्ति पर अधिक निर्भर था। इन दोनों समाजों की आर्थिक एवं सामाजिक संरचना अयोध्या अथवा मिथिला जैसे कृषि-प्रधान एवं संगठित राजतंत्रीय राज्यों से भिन्न थी। इसलिए वहाँ दास-प्रथा का वही विकसित स्वरूप दृष्टिगोचर नहीं होता, जो उत्तर भारतीय आर्य राज्यों में प्राप्त होता है। यह भिन्नता इस तथ्य की ओर संकेत करती है कि दास-प्रथा का विकास प्रत्येक समाज की आर्थिक संरचना, उत्पादन प्रणाली तथा राजनीतिक संगठन के अनुरूप हुआ था।

निष्कर्ष

रामायण में वर्णित दास-प्रथा के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय समाज में दास-व्यवस्था एक सुव्यवस्थित सामाजिक संस्था के रूप में विद्यमान थी, जिसका स्वरूप तत्कालीन राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों से गहराई से जुड़ा हुआ था। वैदिक साहित्य में प्रयुक्त शब्दस्युष एवं श्वासुष शब्दों के अर्थ-विकास से ज्ञात होता है कि प्रारम्भ में यह अवधारणा युद्धबंदियों एवं पराजित समुदायों से संबंधित थी, किन्तु कालान्तर में इसका अर्थ सेवक, आश्रित तथा भृत्य के रूप में विकसित हो गया। इस प्रकार दास-प्रथा का स्वरूप समय के साथ परिवर्तित होता रहा और वह तत्कालीन सामाजिक संरचना का अभिन्न अंग बन गई। रामायण के विभिन्न प्रसंगों से यह ज्ञात होता है कि दास एवं दासियाँ मुख्यतः राजपरिवारों, सामन्तों तथा सम्पन्न वर्ग के आश्रित थे। सीता-विवाह के अवसर पर राजा जनक द्वारा दास-दासियों का उपहारस्वरूप प्रदान किया जाना, श्रीराम द्वारा ब्राह्मणों एवं आचार्यों को दासियों का दान देना, वनगमन के समय अपने आश्रित दास-दासियों को गुरु के संरक्षण में सौंपना तथा राजमहलों में बड़ी संख्या में दास-दासियों की उपस्थिति जैसे प्रसंग इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि दास-प्रथा तत्कालीन राजकीय एवं सामाजिक जीवन का एक सामान्य अंग थी। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि दास केवल श्रमशक्ति नहीं थे, बल्कि वे राजकीय प्रतिष्ठा, आर्थिक समृद्धि तथा सामाजिक वैभव के भी प्रतीक माने जाते थे। अध्ययन से यह तथ्य भी उभरकर सामने आता है कि रामायणकालीन दास-प्रथा का स्वरूप अनेक अन्य प्राचीन सभ्यताओं की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक मानवीय एवं संरक्षणपरक था। स्वामी और दास के संबंध केवल स्वामित्व एवं अधीनता पर आधारित नहीं थे, बल्कि उनमें परस्पर उत्तरदायित्व, विश्वास, निष्ठा तथा संरक्षण की भावना भी विद्यमान थी। दासों के भरण-पोषण, निवास, सुरक्षा एवं जीवन-निर्वाह की व्यवस्था स्वामी का दायित्व मानी जाती थी, जबकि दास पूर्ण समर्पण एवं कर्तव्यनिष्ठा के साथ अपने दायित्वों का निर्वहन करते थे। यही कारण है कि रामायण में दास एवं भृत्य शब्द अनेक प्रसंगों में सम्मानजनक सेवा-भाव, विनम्रता तथा कर्तव्यपरायणता के प्रतीक के रूप में भी प्रयुक्त हुए हैं। साथ ही, यह अध्ययन यह भी इंगित करता है कि दास-प्रथा की उत्पत्ति केवल युद्धों का परिणाम नहीं थी, बल्कि आर्थिक

विषमता, सामाजिक परिस्थितियाँ, दण्ड-व्यवस्था, दान-परम्परा तथा राजकीय संगठन जैसे अनेक कारकों ने इसके विकास में योगदान दिया। अतः रामायण में दास-प्रथा का अध्ययन केवल एक सामाजिक संस्था के इतिहास तक सीमित नहीं है, बल्कि यह प्राचीन भारतीय समाज की सामाजिक संरचना, श्रम-संबंधों, वर्ण-व्यवस्था, आर्थिक संगठन तथा सांस्कृतिक मूल्यों को समझने का एक महत्वपूर्ण माध्यम भी है।

अंततः यह कहा जा सकता है कि रामायण में वर्णित दास-प्रथा को आधुनिक दासता की अवधारणा के समान मानना ऐतिहासिक दृष्टि से उचित नहीं होगा। रामायणकालीन दास-व्यवस्था को उसके समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक संदर्भों में समझना आवश्यक है। यह अध्ययन न केवल प्राचीन भारतीय समाज की जटिल संरचना पर प्रकाश डालता है, बल्कि यह भी स्पष्ट करता है कि भारतीय महाकाव्य केवल धार्मिक ग्रंथ ही नहीं, बल्कि अपने समय के सामाजिक इतिहास, आर्थिक जीवन तथा सांस्कृतिक मूल्यों के महत्वपूर्ण दस्तावेज भी हैं। यही इस अध्ययन की प्रमुख उपलब्धि एवं प्रासंगिकता है।

Author's Declaration:

I/We, the author(s)/co-author(s), declare that the entire content, views, analysis, and conclusions of this article are solely my/our own. I/We take full responsibility, individually and collectively, for any errors, omissions, ethical misconduct, copyright violations, plagiarism, defamation, misrepresentation, or any legal consequences arising now or in the future. The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible or liable in any way for any legal, ethical, financial, or reputational claims related to this article. All responsibility rests solely with the author(s)/co-author(s), jointly and severally. I/We further affirm that there is no conflict of interest financial, personal, academic, or professional regarding the subject, findings, or publication of this article.

संदर्भ—

1. बुद्धिस्ट इंडिया, लन्दन, 1903, पृ.-40।
2. महाभारत, 3.256.11; 4.33.59।
3. श्याम मनोहर मिश्र, प्राचीन भारत में आर्थिक जीवन, पृ.-184।
4. वैश्यः शूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्। तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्यः क्षोभयेतेमिदं जगत्— मनुस्मृति 8/418; कात्यायन स्मृति, पृ.-722।
5. ऋग्वेद, 6.60.6— हतो वृत्राण्यार्यो हतो दासानि सत्पतिः।
6. ऋग्वेद, 10.22.8— अकर्मा दस्युरभि नो अमन्तुरन्यव्रतो अमानुषः। त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भयद्
7. शिवस्वरूप सहाय, हिन्दू सामाजिक संस्थाएँ एवं आर्थिक जीवन, पृ.-337।
8. रामायण, 6.1.6।
9. रामायण, बालकाण्ड, सर्ग 77, श्लोक 5— सीदाससहस्राणि कन्याशतमथापि च। हिरण्यस्य सुवर्णस्य मुक्तानां विद्रुमस्य।
10. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 77.3।
11. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 32.15—16।
12. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 2.9.2.15।
13. रामायण, 3.31.47; 5.34.43; 5.20.59; 5.38.51।

Cite this Article

"डॉ. कुमारी पूनम", "रामायण में दास-प्रथा और प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना", ResearchPro International Multidisciplinary Journal (RPIMJ), ISSN: 3107-9679 (Online), Volume:2, Issue:3, July-September 2026.

"Copyright © 2026 The Author(s). This work is licensed under Creative Commons Attribution 4.0 (CC-BY), allowing others to use, share, modify, and distribute it with proper credit to the author."